1991 में जब मैं 20 साल के आसपास था तब मैं अपने दोस्तों के साथ गंगोत्री के भ्रमण पर गया। गंगोत्री उत्तराखंड में हिमालय के पहाड़ों में सबसे बड़े ग्लेशियर में से एक है। हाल में लगभग दो दशकों के बाद मैंने अध्ययन के उद्देश्य से उस स्थान का पुन: दौरा किया। इसके दौरान मैंने गोमुख तक ट्रेकिंग की। गोमुख गंगोत्री से 18 किलोमीटर की दूरी पर 4255 मीटर ऊंचाई पर है। इसे गंगोत्री ग्लेशियर का धड़ कह सकते हैं। यहाँ पर भागीरथी नदी काफी तीव्र गति से बहती है। गोमुख के आसपास प्रकृति ने प्राकृतिक स्थलाकृति बनाई है। मैं चट्टानों के बड़े शिलाखण्ड को देख सकता था जिसमें टूटे बर्फ के कुछ भाग लगे थे और साथ ही ग्लेशियर के ठोस मृत्तिकाय बर्फ की विशाल चट्टानें सीना तानकर खड़ी थीं। गंगोत्री पहाड़ का ऊपरी भाग शुष्क जमीन है जहाँ पर पेड़ों की मौजूदगी कम है। गंगोत्री और गोमुख के बीच चीरबासा नाम का स्थल है, जो कि चीर पेड़ों के लिए जाना जाता है। अगर कोई गोमुख से पहाड़ को देखे तो एक नितान्त विषमता दिखाई देगी—शुष्क जमीन के बाद हरे जंगल। ढाल के नीचे शुष्क जमीन एकाएक अविकसित वन पर खत्म हो जाता है। मैंने अपने स्थानीय गाइड से आग्रह किया कि वह मुझे आम रास्ते से अलग वैसी जगह पर जहाँ वन पतले और कम सघन होते जा रहे हैं ऐसे रास्ते से ट्रेकिंग करवाते हुए ऊपर ले जाए। ऊपर चढ़ते हुए मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि कई पेड़ों के तने वहाँ पड़े हुए थे और मुझे तब और आश्चर्य हुआ कि पहाड़ के ऊपर पेड़ों के आकार छोटे होते जा रहे थे और तने के व्यास से वे युवा लग रहे थे। मेरा गाइड जो कि उस क्षेत्र के दूरवर्ती गांव का निवासी था, उसने मुझे बतलाया कि हम जो तने इधर उधर गिरे हुए देख रहे हैं उन्हें गैर कानूनी ढंग से काटा गया है। एक सबसे चौंका देने वाली सूचना जो उसने मुझे दी कि वनों का प्रसार हो रहा है। यद्यपि पिछले दो दशकों से पेड़ों की सघनता कम होती जा रही है।

क्या वनों का प्रसार हो रहा है? मैं यह जानने को उत्सुक हुआ कि ऐसा क्यों हो रहा है? वातावरणीय दशा में अवश्य ही कुछ बदलाव आया होगा जिससे कि ऊंचाई पर पेड़ों के विकास को मदद मिली होगी। मैं जब इस पर विचार कर रहा था, तब मुझे याद आया कि समाचारपत्रों और लेखों में प्राय: मैंने यह पढ़ा है कि गंगोत्री के ग्लेशियर पिघल रहे हैं। मुझे आश्चर्य हो रहा था कि गंगोत्री पहाड़ों का तापमान क्या गर्म हो गया है कि जिससे कि जहाँ पहले केवल घास उगती थी वहाँ अब पेड़ उगने लगे हैं। यह मेरे सत्य का अनुभव करने का पहला वास्तविक प्रयास था। वैश्विक ताप वृद्धि एवं जलवायु परिवर्तन के द्वारा पृथ्वी को प्रभावित होने का यह मेरा प्रत्यक्ष अनुभव था। जब मैं वापस होटल लौटा तो पूरी रात मैं इस बात से परेशान और चिंतित था। यह अवश्य है वैश्विकतापवृद्धि और तापमान में बदलाव का प्रभाव था।

गंगोत्री ग्लेशियर करीब 29 किलोमीटर लंबा और दो से छ: किलोमीटर चौड़ा है। सेटेलाइट के चित्र पहाड़ों पर विशालकाय महामार्ग का दृश्य दिखाते हैं। यह मध्य हिमालय का सबसे बड़ा ग्लेशियर है। 20वीं सदी के द्वितीय भाग में प्रतिवर्ष 10-30 मीटर की दर से गंगोत्री ग्लेशियर पिघल रहा है। अपसरण या निवर्तन की गति 1935 से 1956 के बीच सामान्य बनी रही, लेकिन उसके बाद इसमें तीव्रता आई। 1935 से 1956 के बीच 2,530 वर्ग मीटर का निवर्तन हुआ। 1956 से 1962 के बीच यह दर ढाई गुणा के करीब बढ़ गया। 1962 से 1971 के बीच पाँच गुणा वृद्धि हुई। लेकिन पिछले 20 सालों में गंगा नदी को जल देने वाला ग्लेशियर चैनल कई मीटर दूर स्थानान्तरित हो गया है और इसने रास्ता भी बदल लिया है। जल की मात्रा भी तेजी से सिकुड़ रही है। इसी प्रकार पर्वत श्रेणी के कई भाग, जो चट्टानों और मलबों से सदियों से बना हैं, निर्वनीकरण और परिणामी भूस्खलन के कारण पूरी तरह लुप्त हो गए हैं।

'गंगोत्री ग्लेशियर की धीमी मौत' एक स्थापित तथ्य है।* एक हाल के वृत्तचित्र ने वर्तमान में गंगोत्री ग्लेशियर की दशा को दर्शाया है और इस प्रकार वैश्विक तापवृद्धि का उस ग्लेशियर पर प्रभाव का अन्वेषण किया जो गंगा की व्यवस्था का पोषण करती है। वर्ष 2007 में अपने चौथे मूल्यांकन रिपोर्ट में वातावरणीय बदलाव के अन्तर सरकारी पैनेल (आई.पी.सी.सी.) ने यह दावा किया कि 2035 तक हिमालय के ग्लेशियर पिघल जाएंगे। इस विशिष्ट रिपोर्ट के उल्लेख ने सरकारी नीति निर्माताओं और पर्यावरणवादियों को झकझोर दिया। वैज्ञानिकों ने इस दावे पर प्रश्न चिह्न लगाया, क्योंकि यह कोई वैज्ञानिक आंकड़े पर आधारित नहीं था। इसके लिए सूचनाएँ सम्भवत: उस साक्षात्कार से ली गई थीं जो कि जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के प्रोफेसर सैयद हुसैन ने दिया था और जो न्यू साइंटिस मैगजीन में छपा था।

इसे प्रथम बार वर्ल्ड वाइड फंड फार नेचर (डब्लू.डब्लू.एफ.) के 2005 की ग्लेशियर रिपोर्ट में छापा गया था। आईपीसीसी ने इस डब्लू डब्लू एफ रिपोर्ट को 2007 में उद्धृत किया था। तथापि इंडियन स्पेस रिसर्च आर्गेनाइजेशन के द्वारा सेटेलाइट के माध्यम से लिए गए चित्रों के आधार पर हाल के एक विश्लेषण में यह सुझाव दिया गया है कि 'हिमालय ग्लेशियर 75 प्रतिशत पतले हो रहे हैं।' इस शोध में यह दावा किया गया कि 1989 से 2004 के बीच के 15 सालों में कुल ग्लेशियर क्षेत्र का 3.75 प्रतिशत खत्म हुआ है। ग्लेशियर के पिघलने को लेकर आम व्याख्या यह होगी कि इससे नदियों में ज्यादा जल आ जाएगा और यह देश और उसके लोगों के लिए अच्छा चिह्न होगा। लेकिन दूरगामी तौर पर ग्लेशियर के पिघलने से नदियाँ सूख जाएंगी, क्योंकि उत्तरी भारत की अधिकांश नदियों का उद्गम ग्लेशियर से होता है। इन नदियों में करीब 70 से 80 प्रतिशत जल ग्लेशियर और बर्फ के पिघलने से आता है और बचा हुआ मानसूनी वर्षा से। इसमें संदेह नहीं है कि अगली पीढ़ी गंगा, सिंधु, ब्रह्मपुत्र और असंख्य नदियां जो पूरे उत्तर भारत के मैदानों में बहती हैं को सूखते हुए देखेंगे और ये नदियां भविष्य में मौसमी नदियां बनकर रह जाएंगी।

पर्यावरण वैज्ञानिक मानते हैं कि वैश्विक तापमान में मात्र 1.5° सेल्सियस की वृद्धि पिछले 10,000 सालों में अनुभव किए गए बदलावों से वृहत बदलाव आ सकते हैं। क्षेत्रीय और मौसमी तरीकों में बदलाव आ जाएगा, जैसे कि गर्मी के मौसम काल में वृद्धि और सर्दी के मौसम की कमी आ जाएगी। चरम मौसमी दशाएं जैसे कि बाढ़ और सूखे की बारम्बारता बढ़ जाएगी। कई मानते हैं कि यह प्रभाव अभी से ही दिखाई पड़ने लगा है। वस्तुत: 1990 के दशक में पहले के मुकाबले प्राकृतिक आपदाओं की संख्या काफी बढ़ गई है। 1980 के दशक की तुलना में 1990 के दशक में मौसम सम्बन्धी नुकसान पांच गुणा बढ़ गए हैं। ऐसी घटनाओं में वृद्धि से मृदा अपरदन और मरुभूमि में तेजी आएगी जो विश्व कृषि को बाधित करेगा और खाद्य सुरक्षा के लिए खतरा सिद्ध होगा।

समुद्र गर्म हो जाएंगे और समुद्र का स्तर ऊँचा उठ जाएगा। ध्रुवीय बर्फ की चादरों के पिघलने की सम्भावना इस समस्या को और बढ़ाएगी। नीदरलैण्ड, मिस्र, बंग्लादेश और इंडोनेशिया जैसे स्थानों के तटवर्ती क्षेत्रों में बाढ़ आ जाएगी जिससे कि बड़ी मात्रा में जनसंख्या को अन्यत्र ले जाना होगा। छोटे द्वीप जैसे कि मालदीव और दक्षिणी प्रशान्त महासागर के कई द्वीप लुप्त हो जाएंगे। हजारों की संख्या में पशुओं और पौधों की प्रजातियाँ ऐसी दशा में तेजी से सामंजस्य बैठा पाने में असमर्थ होंगी और वे लुप्त हो जाएंगी। ध्रुवीय प्रजातियाँ पहले लुप्त होंगी और उनके बाद सभी जगहों के तटवर्ती क्षेत्रों की प्रजातियाँ खत्म हो जाएंगी। अगर ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन की वर्तमान दर कायम रही तो पृथ्वी के लिए डरावना भविष्य नजर आ रहा है। अगर ये उत्सर्जन में तेजी से अभी भी कमी आ गई तब भी पूर्ववर्ती उत्सर्जन का प्रभाव लंबे समय तक जारी रहेगा। तथापि, अमेरिका जैसे देश अभी भी कल के विनाश को रोकने के लिए आज के कुछ आराम को त्यागना नहीं चाहते हैं।